ओ३म्

'अविद्यायुक्त असत्य धार्मिक मान्यताओं का खण्डन और आर्यसमाज'

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

महर्षि दयानन्द प्राचीन वैदिक कालीन ऋषियों की परम्परा वाले वेदों के मंत्रद्रष्टा ऋषि थे। वह सफल व सिद्ध योगी होने के साथ समस्त वैदिक व इतर धर्माधर्म विषयक साहित्य के पारदर्शी विद्वान भी थे। उन्होंने मथुरा निवासी वैदिक व्याकरण के सूर्य प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द सरस्वती से आर्ष व्याकरण की अष्टाध्यायी–महाभाष्य पद्धति का अध्ययन किया था। इससे पूर्व भी अपने लगभग 30 वर्षों के अध्ययन काल (1833–1863) में उन्होंने विभिन्न गुरुओं वा विद्वानों से लौकिक संस्कृत व्याकरण का अध्ययन किया था। गृहत्याग के बाद के लगभग 29 वर्षों में (1846–1875) आप देश के अनेक भागों के अनेक लोगों के सम्पर्क में आये। आपने देश में फैले हुए नाना मत मतान्तरों के अनुयायियों सहित उनके आचार्यों से सम्पर्क कर उनके मत के गुणागुणों व विशेषताओं सहित उनमें निहित सत्यासत्य को जानने का सत्प्रयास किया था। स्वामी दयानन्द ऐसे व्यक्ति नहीं थे जो किसी भी अविद्यायुक्त वा मिथ्या बात को बिना पूरी परीक्षा व सन्तुष्टि के स्वीकार कर लेते। यही कारण था कि भारत के प्रायः सभी मत–मतान्तरों को जानने व समझने पर भी उनकी तृप्ति नहीं हुई थी। वह योग विद्या में प्रवृत्त हुए और उसमें दिन प्रतिदिन प्रगति करते रहे। उसका उन्होंने जीवन के अन्तिम क्षणों तक अभ्यास व पालन किया। नाना मत–मतान्तरों में से वह किसी एक मत के चक्रव्यूह में नही फंसे। ऐसा प्रतीत होता है कि वह जान गये थे कि भारत में प्रचलित किसी भी मत–मतान्तर में निर्भ्रान्त व सत्य पर आधारित मान्यतायें नहीं हैं। उन्हें योग ही प्रिय प्रतीत हुआ जिसका उन्होंने मन–वचन–कर्म से क्रियात्मक अभ्यास किया। इतना होने पर भी वह अभी सत्य विद्या व सद्ज्ञान की उपलब्धि के लिए आशान्वित व प्रयत्नशील थे। सन् 1857 का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम हो जाने व उसके बाद देश में कुछ शान्ति व स्थिरता बहाल होने पर वह सन् 1860 में मथुरा में दण्डी स्वामी प्रज्ञाचक्षु दिव्य गुरु विरजानन्द की संस्कृत पाठशाला में विद्या के अध्ययन के लिए पहुंचते हैं और लगभग 3 वर्ष अध्ययन कर सफल मनोरथ व कृतकार्य होते हैं। **अध्ययन पूरा होने पर गुरुजी से दीक्षा लेते हैं और गुरु की आज्ञा के अनुसार असत्य व अविद्या से ग्रसित मतों के खण्डन व सत्य वैदिक मत की स्थापना के लिए प्रवृत्त होते हैं।**

महर्षि दयानन्द के जितने भी किंचित विस्तृत व संक्षिप्त उपदेश उपलब्ध होते हैं उनसे यही पता चलता है कि वह वेद एवं वैदिक सिद्धान्तों का मण्डन करते थे। वेद से इतर वेद विरुद्ध मिथ्या मतों का वह युक्ति, तर्क व वेद के प्रमाणों के आधार पर खण्डन भी करते थे। वह सब श्रोताओं किंवा मत–मतान्तरों के आचार्यों को चुनौती भी देते थे कि वह अपने–अपने मत की मिथ्या मान्यताओं का निराकरण करें वा सत्य मत वेद को अपनायें और यदि चाहें तो वह उनसे शास्त्रार्थ, वार्तालाप, चर्चा व शंका समाधान भी कर सकते हैं। हमें यह देख कर आश्चर्य होता है कि उन्हें सभी मत–मतान्तरों की उत्पत्ति, मान्यताओं एवं सिद्धान्तों का भी व्यापक ज्ञान था। ऐसा भी देखा गया है कि अनेक मतों के आचार्यों को अपने मत की मिथ्या मान्यताओं का परिचय नहीं होता था। वह तो अपने मत के प्रति अन्धी श्रद्धा व विश्वास के कारण उनको **'बाबा वाक्यं प्रमाणम्'** के आधार पर आंखे बन्द कर स्वीकार करते थे और उनका पालन करते थे जबकि उनके मत सत्यासत्य की दृष्टि से असत्य मान्यताओं से मिश्रित होते थे। महर्षि दयानन्द के सामने आकर वह सभी निरुत्तर होकर लौट जाते थे। **महर्षि दयानन्द के प्रचार के कारण मत–मतान्तरों के अनेकानेक विद्वानों वा आचार्यों को अपने–अपने मत के मिथ्यात्व का ज्ञान हो गया था।** वह उन्हें चुनौती देने वा आमंत्रित करने पर भी शास्त्रार्थ व शंका समाधान तक के लिए उनके निकट नहीं आते थे और येन केन प्रकारेण अपने मतानुयायियों को स्वामी दयानन्द जी की सभाओं में जाने के लिए निषिद्ध करते थे। प्रायः सभी मतानुयायियों की स्थिति यह थी कि वह अपने–अपने मत के आचाार्यों के अनुचित आदेश को मानते थे और स्वामी दयानन्द की सभाओं में नहीं आते थे। इससे अनुमान किया जा सकता है कि अपने–अपने मत–मतान्तरों को अच्छा बताने वाले आचार्यों की क्या स्थिति थी। आज भी उस स्थिति में कोई अधिक अन्तर नहीं आया है। अब वह अधिक रूढ़िवादी और कट्टर हो गये हैं और अविद्यान्धकार से ग्रसित, हठ व दुराग्रह आदि से घिरे हुए हैं। अतः आज वेद मत के मण्डन सहित मत–मतान्तरों के खण्डन की महती आवश्यकता बनी हुई है। ऐसा होने पर ही मनुष्य जाति उन्नत व अपने–अपने जीवन के उद्देश्य को पूरा करने में सफल हो सकती है अन्यथा अविद्या के अन्धकार में पड़कर उनका यह मानव जीवन व्यर्थ व नष्ट–भ्रष्ट हो जायेगा।

महर्षि दयानन्द ने विश्व जन समुदाय पर एक बहुत बड़ा उपकार यह किया है कि उन्होंने अपने समय में केवल मौखिक प्रचार ही नहीं किया अपितु अपनी वैदिक विचारधारा, मान्यताओं व सिद्धान्तों के अनेक ग्रन्थों का प्रणयन भी किया। उनका प्रसिद्ध ग्रन्थ **सत्यार्थप्रकाश** विश्व के धार्मिक व सामाजिक साहित्य में अन्यतम है। वेदों के बाद विश्व

Created using easyPDF Printer
Click here to purchase a license to remove this image

महत्वपूर्ण इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि इसे 14 समुल्लासों वा अध्यायों में लिखा गया है जिसमें प्रथम 10 अध्याय वैदिक मत का मण्डन करते हुए ईश्वर, जीव व प्रकृति सहित सभी विषयों व सामाजिक मान्यताओं पर वैदिक दृष्टिकोण व विचारों को प्रस्तुत करते हैं। इस अपूर्व ग्रन्थरत्न में प्रायः सभी आवश्यक विषयों की चर्चा कर तद्विषयक वैदिक दृष्टिकोण को तर्क व युक्ति सहित एवं अनेक स्थानों पर प्रश्नोत्तर शैली में प्रस्तुत कर उसे सरल व सहज बना दिया गया है। इन सिद्धान्तों की सत्यता का विश्वास एक साधारण हिन्दी पाठी मनुष्य भी आसानी से कर सकता है जो कि इस ग्रन्थ की रचना से पूर्व कदापि सम्भव नहीं था। **संसार में अनेक लोगों ने इस ग्रन्थ को पढ़ा है और इससे सहमत होकर अपना मत परिवर्तन कर आर्यसमाज के अनुयायी बने हैं। आज आर्यसमाज में जितने भी सदस्य व परिवार हैं वह सब प्रायः सत्यार्थप्रकाश के अध्ययन व प्रचार का ही परिणाम है।** संसार में किसी विद्वान, मताचार्य व मतानुयायी में यह योग्यता नहीं है कि वह सत्यार्थप्रकाश के प्रथम से दशम समुल्लासों में व्यक्त विचारों, मान्यताओं, सिद्धान्तों सहित उसमें दी गई तर्क व युक्तियों का खण्डन कर सकें। यदि कभी किसी ने ऐसा करने का प्रयत्न किया है तो उसका आर्य विद्वानों ने तर्क, युक्ति व प्रमाण सहित समाधान कर दिया है। यह कोई सामान्य नहीं अपितु असाधारण बात है।

वैदिक सिद्धान्तों के आदर्श ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में वैदिक मान्यताओं का विस्तार से उल्लेख करने के बाद स्वामी दयानन्द उसके उत्तर भाग में आर्यावर्त्तीय व आर्यावर्त्त से बाहर के देशों में उत्पन्न मतों की समीक्षा करते हैं जिसमें सत्यासत्य की परीक्षा करते हुए असत्य विचारों व मान्तयओं का खण्डन भी किया गया है। सत्यार्थप्रकाश का ग्यारहवां समुल्लास आर्यावर्त्तीय आस्तिक मतों की समीक्षा व खण्डन में लिखा गया है जिसका आरम्भ अनुभूमिका से होता है। यह भूमिका बहुत महत्वपूर्ण एवं विस्तृत है। इस अनुभूमिका में महर्षि दयानन्द ने मत–मतान्तरों के खण्डन में अपनी निष्पक्ष व सभी मतों के मनुष्यों के प्रति अपनी सदभावना को प्रदर्शित किया है। उनके अनमोल व स्वर्णिम वाक्य हैं कि **यह सिद्ध बात है कि पांच सहस्र वर्षों के पूर्व वेदमत से भिन्न दूसरा कोई भी मत भूगोल में न था क्योंकि वेदोक्त सब बातें विद्या से अविरुद्ध हैं।** वेदों की अप्रवृत्ति होने का कारण महाभारत युद्ध हुआ। इन (वेदों) की अप्रवृत्ति से अविद्याऽन्धकार के भूगोल में विस्तृत होने से मनुष्यों की बुद्धि भ्रमयुक्त होकर जिस के मन में जैसा आया वैसा मत चलाया। इन सब मतों में 4 चार मत अर्थात् जो वेद–विरुद्ध पुराणी, जैनी, किरानी और कुरानी (अन्य) सब मतों (मतों की शाखा–प्रशाखा रूप इकाईयों) के मूल हैं, वे क्रम से एक के पीछे दूसरा, तीसरा, चौथा चला है। **अब इन चारों की शाखा एक सहस्र से कम नहीं हैं। इन सब मतवादियों, इनके चेलों और अन्य सब को परस्पर सत्याऽसत्य के विचार करने में अधिक परिश्रम न हो इसलिए यह ग्रन्थ (सत्यार्थप्रकाश) बनाया है। महर्षि दयानन्द आगे लिखते हैं कि जो–जो इस में सत्य मत का मण्डन और असत्य मत का खण्डन लिखा है वह सब को जनाना ही प्रयोजन समझा गया है।** इसमें जैसी मेरी बुद्धि, जितनी विद्या और जितना इन चारों मतों के मूल ग्रन्थ देखने से बोध हुआ है उसको सब के आगे निवेदित कर देना मैंने उत्तम समझा है क्योंकि विज्ञान (धर्म व समाज विषयक सत्य ज्ञान) गुप्त (विलुप्त) हुए का पुनर्मिलना सहज नहीं है। पक्षपात छोड़कर इस (सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ) को देखने से सत्याऽसत्य मत सब को विदित हो जायेगा। **पश्चात् सब को अपनी–अपनी समझ के अनुसार सत्यमत का ग्रहण करना और असत्य मत को छोड़ना सहज होगा।** इन में से जो पुराणादि ग्रन्थों से शाखा शाखान्तर रूप मत आर्यावर्त्त देश में चले हैं उन का संक्षेप से गुण व दोष इस (सत्यार्थप्रकाश के) ग्यारहवें समुल्लास में दिखलाया जाता है। स्वामी दयानन्द सभी मतों के लोगों से अपेक्षा करते हुए कहते हैं कि **'इस मेरे कर्म से यदि उपकार न मानें तो विरोध भी न करें। क्योंकि मेरा तात्पर्य किसी की हानि वा विरोध करने में नहीं किन्तु सत्याऽसत्य का निर्णय करने–कराने का है। इसी प्रकार सब मुनष्यों को न्यायदृष्टि से वर्तना अति उचित है। मनुष्य जन्म का होना सत्याऽसत्य का निर्णय करने कराने के लिये है न कि वाद–विवाद विरोध करने कराने के लिये। इसी मत–मतान्तर के विचार से जगत् में जो–जो अनिष्ट फल हुए, होते हैं और आगे होंगे, उन को पक्षपातरहित विद्वज्जन जान सकते हैं।'**

मत–मतान्तरों के खण्डन–मण्डन के सदर्भ में स्वामी दयानन्द जी कहते हैं कि जब तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मत–मतान्तर का विरूद्ध वाद न छूटेगा तब तक अन्योऽन्य को आनन्द न होगा। यदि हम सब मनुष्य और विशेष विद्वज्जन ईर्ष्या–द्वेष छोड़ सत्याऽसत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना कराना चाहे, तो हमारे लिये यह बात असाध्य नहीं है। यह निश्चय है कि इन विद्वानों के विरोध ही ने सब को विरोध जाल में फंसा रखा है। यदि ये लोग अपने प्रयोजन (हित वा स्वार्थ) में न फंस कर सब के प्रयोजन को सिद्ध करना चाहें तो अभी ऐक्यमत हो जायें। इस के होने की युक्ति (स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश के अन्तर्गत) इस (ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश) की पूर्ति पर लिखेंगे। सर्वशक्तिमान् परमात्मा एक मत (वैदिक मत) में प्रवृत्त होने का उत्साह सब मनुष्यों की आत्माओं में प्रकाशित करे। स्वामी जी ने उपर्युक्त पंक्तियों में मत–मतान्तरों की परस्पर विरोधी मान्यताओं के खण्डन के अपने आशय को

Created using easyPDF Printer
Click here to purchase a license to remove this image

स्पष्ट कर उसकी आवश्यकता व अपरिहार्यता पर प्रकाश डाला है। उनका ऐसा करना उचित, न्यायसंगत व प्रशंसनीय था तथा सभी विद्वान व ज्ञानी कहलाने वाले मतों के आचार्य व अनुयायियों को उसी भावना से उनके खण्डन को समझ कर स्वीकार करना चाहिये अन्यथा उनके ज्ञान व विद्वता का कोई महत्व व उपयोग प्रतीत नहीं होता।

सत्यार्थ प्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में स्वामी दयानन्द ने आर्यावर्त की महत्ता का वर्णन कर शंकराचार्य के अद्वैतमत, वाममार्ग, शैवमत, वैष्णवमत, सभी प्रकार की अवैदिक मूर्तिपूजा, तन्त्र ग्रन्थ, गया श्राद्ध, हरिद्वार आदि तीर्थों, अवैदिक गुरु माहात्म्य, अठारह पुराण, ग्रहों का फल, गरुड़ पुराण की मिथ्या बातें, ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाज आदि मतों की समीक्षा व खण्डन कर उनकी मिथ्या बातों का युक्ति व तर्क के साथ खण्डन किया है। इसी प्रकार बारहवें से चौदहवें समुल्लासों में जैन–बौद्ध मत, ईसाई व कुरानी मत की समीक्षा कर इनके मिथ्यात्व पर प्रकाश डाला है जिससे कि इन वा अन्य मतों के सभी अनुयायी व निष्पक्ष जिज्ञासु सरलता से सत्याऽसत्य का निर्णय कर सकें।

महर्षि दयानन्द के उपर्युक्त वाक्यों से यह विदित होता है कि उनका मत–मतान्तरों की समीक्षा व खण्डन का हेतु सभी मतों के लोगों को मत–पन्थों के धर्म ग्रन्थों में निहित मिथ्या मान्यताओं का ज्ञान कराना था। **ऋषि ने ऐसा क्यों किया? यदि न करते तो क्या हानि थी? अन्य मतों के आचार्यों व विद्वानों ने तो ऐसा नहीं किया तो फिर महर्षि दयानन्द को इनके खण्डन करने की क्या मजबूरी थी?** इनका उत्तर है कि ऋषि ने मत–मतान्तर की असत्य मान्यताओं का खण्डन इस लिये किया कि वह विद्वान थे और विद्वान वही होता है जो सत्य को ग्रहण करे व कराये और असत्य को छोड़े वा छुड़वाये। **वह व्यक्ति विद्वान नहीं कहला सकता जो जानते हुए भी असत्य का खण्डन नहीं करता।** एक डाक्टर यदि रोगी का उपचार न करे तो क्या वह डाक्टर कहला सकता है? कदापि नहीं। यदि वह रोगी का उपचार करता है तभी वह डाक्टर है। दर्जी यदि लोगों के कपड़े को उसके दाता की नाप के अनुसार काट–छांट कर नहीं सिलता तो वह दर्जी किसी काम का नहीं होता। यदि नाप में न्यूनता व अधिकता करता है तो भी वह अच्छा दर्जी नहीं हो सकता। महर्षि दयानन्द ने भी मतों की असत्य बातें जिनसे मतानुयायियों को हानि होती है, उनसे परिचित कराकर उनके उस असत्यता के रोग को दूर कर उचित मात्रा में उन्हें सत्य का यथार्थ ज्ञान कराया जिससे वह तदनुसार आचरण कर अपना जीवन सफल बना सके जो कि परम्परा के अनुसार चलने से नहीं बन सकता था। किसान भी फसल की अच्छी पैदावार के लिए खेत में हल चलाकर भूमि को पोला व नरम करता है। उसमें पानी व खाद डालता है जिससे बीज अच्छी प्रकार से पल्लवित और पुष्पित हो सके। खेत में हल चलाना, खाद व पानी डालना, निराई व गुड़ाई करना व अन्त में बोई गई फसल को काटना व उनसे अन्न के दाने निकालना, यह एक प्रकार का खण्डन व मण्डन दोनों ही है। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो हमें अन्न प्राप्त नहीं होगा। यही सृष्टि का नियम है। यही नियम माता–पिता द्वारा सन्तान को शिक्षित करने के लिए ताड़ना करने व डाक्टर द्वारा गम्भीर रोगों की चिकित्सा करने में शल्य क्रिया करने, यदा–कदा हाथ व पैर तक काट डालने आदि की तरह, असत्य का खण्डन व सत्य का मण्डन अर्थात् जो ठीक है, उसे नहीं छेड़ना यथावत् रहने देना रूपी मण्डन है। सभी क्षेत्रों में सभी लोग आवश्यकतानुसार खण्डन व मण्डन करते हैं। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो सभी मतों के आचार्यों ने अपने पूर्व मतों व उनके आचार्यों की मान्यताओं का खण्डन कर ही स्वमत को स्थापित किया। यदि वह सब ऐसा कर सकते थे तो मनुष्य मात्र के हित व उन्नति की दृष्टि से महर्षि दयानन्द द्वारा किया गया खण्डन उचित क्यों नहीं? उनका खण्डन करना सर्वथा उचित है।

महर्षि दयानन्द का उद्देश्य संसार के मनुष्यों को मत–मतान्तरों के जाल से निकाल कर उन्हें उनसे स्वतन्त्र कराना व सच्चिदानन्द, सर्वव्यापक, निराकार, घट–घट में व्यापक वा सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ व सर्वशक्तिमान ईश्वर की सच्ची स्तुति, प्रार्थना व उपासना में लगाना था। इससे मनुष्यों को इस जन्म व परजन्म, दोनों में ही, सभी प्रकार की उन्नति अभ्युदय व निःश्रेयस का लाभ मिलना निश्चित था। यदि धर्मान्तरण कर अपनी संख्या में वृद्धि करने वाले सत्यासत्य से मिश्रित मान्यताओं के मतों को अपना–अपना प्रचार व खण्डन मण्डन का अधिकार है तो फिर महर्षि दयानन्द को सत्य का मण्डन व असत्य के खण्डन का अधिकार क्यों नहीं? **स्वामी दयानन्द जी ने ईश्वर प्रदत्त अधिकार का उपयोग किया, लोगों को असत्य से दूर किया व सत्य को प्राप्त कराया, इस कारण सारी मनुष्य जाति उनकी ऋणी हैं।** ईश्वर सर्वशक्तिमान है। महर्षि दयानन्द ने खण्डन का कार्य अपने गुरु स्वामी विरजानन्द और ईश्वर की प्रेरणा से ही किया था। हमें उनके मार्ग पर चलकर संसार को सत्य व असत्य के स्वरुप से परिचित कराना है। कोई सत्य वैदिक मत को स्वीकार करे या न करें, यह उसका निजी अधिकार है, परन्तु आर्यसमाज व इसके अनुयायियों को सत्य के प्रचार का अपना कर्तव्य निभाना है। **'सत्यमेव जयते नानृतं'** की भांति सत्य देर में ही सही, विजयी अवश्य होता है। आगे भी होगा। ईश्वर संसार के मनुष्य के हृदय में सत्य व असत्य को जानने, सत्य को ग्रहण करने एवं असत्य का त्याग करने की प्रेरणा करें, यही उससे प्रार्थना है।

–मनमोहन कुमार आर्य
पताः 196 चुक्खूवाला–2
देहरादून–248001
फोनः09412985121

Created using easyPDF Printer
Click here to purchase a license to remove this image